पुस्तक समीक्षा

भारतीय मीडिया की सामाजिक और आर्थिक संरचना का विश्लेषण

समीक्षक
अनूप कुमार
शोधार्थी
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं मास कम्युनिकेशन विभाग
पांडिचेरी विश्वविद्यालय
पुद्दुचेरी- 605 014
Email: anoop.bhumasscomm@gmail.com

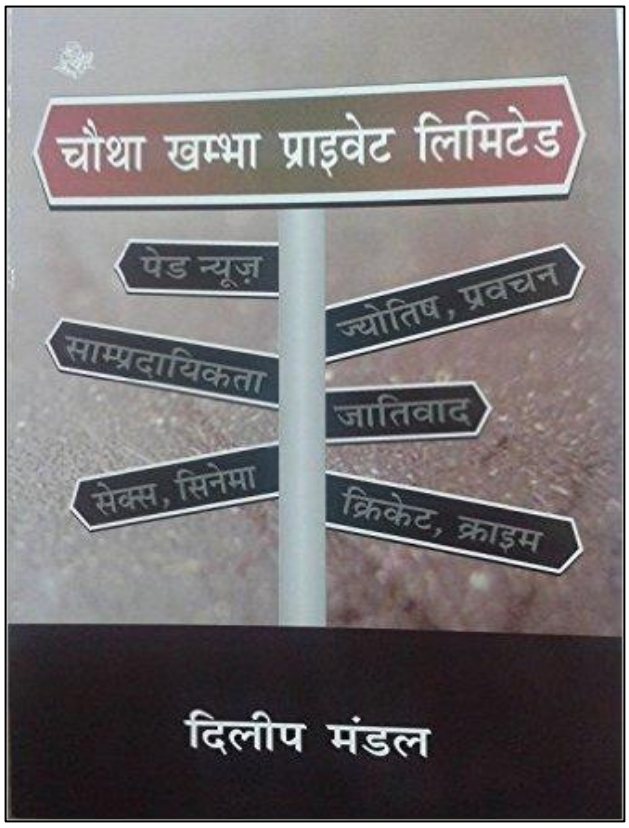

'लोकतंत्र का चौथा खम्भा' यानि कि मीडिया अब प्राइवेट लिमिटेड कंपनी हो चला है। मीडिया को जातिवाद, साम्प्रदायिकता, घोर पूंजीवाद, कुलीन हितैषी और जन विरोधी दीमकों ने खंडहर में तब्दील कर दिया है। दिलीप मंडल द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड' मीडिया के इसी स्वरुप की पड़ताल करती है। पुस्तक को घटनाओं और मुद्दों के आधार पर विभिन्न अध्यायों में बाँटा गया है। दिलीप मंडल विभिन्न समाचारपत्र-पत्रिकाओं, टेलीविज़न चैनलों और कई अन्य मीडिया समूहों से सांस्थानिक एवं अनौपचारिक तौर पर जुड़े रहे हैं। पत्रकारीय लेखन के साथ-साथ उन्होंने भारतीय जन संचार संस्थान में प्रशिक्षण का कार्य भी किया है। सम्प्रति जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय से मीडिया की सामाजिक संरचना विषय पर शोध कार्य कर रहे हैं। 'मीडिया का अंडरवर्ल्ड', 'कार्पोरेट मीडिया: दलाल स्ट्रीट' और 'जातिवार जनगणना: संसद, समाज और मीडिया' उनके द्वारा लिखी गयी प्रमुख पुस्तकें हैं। भारतेंदु पुरस्कार और राजा राममोहन राय राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त कर चुके दिलीप मंडल जी ने 'चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड' पुस्तक में भारत की मुख्यधारा की मीडिया के विचलन और विसंगति की मीमांसा का प्रस्तुतीकरण किया है।

विचारों की विविधता बनाये रखने, समाज के सभी समूहों को मीडिया में उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने और लोककल्याणकारी भूमिका निभाने के लिये मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता रहा है परन्तु मीडिया में हो रहे बदलाव इसके भिन्न रूप को दर्शातें हैं। मीडिया अब लोककल्याणकारी भूमिका निभाने के बजाय कार्पोरेट के हितों का प्रतिनिधित्व करता है और इसीलिए दिलीप मंडल जी मीडिया को चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड कहते हैं। चौथा खम्भा इसलिए कि मीडिया अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की आज़ादी की दुहाई देता है और कंपनी इसलिए क्योंकि यह शुद्ध मुनाफ़े की दौड़ में शामिल हो गया है। दिलीप मंडल जी कहते हैं-

"भारत में उदारीकरण के साथ मीडिया के कार्पोरेट बनने की प्रक्रिया तेज़ हो गई और अब यह

प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। ट्रस्ट संचालित 'द ट्रिब्यून' के अलावा देश का हर मीडिया समूह कार्पोरेट नियंत्रण में है (पृष्ठ 65)"।

दिलीप मंडल भारतीय मीडिया में आये बदलाओं को समझाने के लिये नोम चोमस्की और एडवर्ड एस हरमन द्वारा प्रतिपादित प्रोपेगंडा मॉडल का इस्तेमाल करते हैं। चोमस्की और हरमन कहते हैं कि मीडिया का जन विरोधी होना कोई षड्यंत्र नहीं हैं बल्कि यह उसकी संरचनात्मक विवशता है। स्वामित्व के स्वरुप, आमदनी का तरीका और ख़बरों का स्रोत मीडिया को पूंजीवाद के हित मे खड़ा कर देता है। दिलीप मंडल प्रोपेगंडा मॉडल को भारतीय सन्दर्भ में विस्तारित करते हुए कहते हैं कि मीडिया देश-काल की सामाजिक संरचना (भारत के सन्दर्भ में जातिवाद) को भी प्रतिबिंबित करता है। मीडिया का मालिकाना स्वरुप और न्यूज़रूम में दलितों, आदिवासियों, सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों और धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यक समूहों की ग़ैर-नुमाइंदगी और/या अल्प प्रतिनिधत्व मीडिया को जन विरोधी बनता है। जातिगत पूर्वाग्रह, जातीय भेदभाव और धार्मिक विद्वेष की भावना मीडिया पाठों (मीडिया टेक्स्ट) में भी परिलक्षित होती है। दिलीप मंडल जी कहते हैं-

"भारतीय मीडिया में दलितों, आदिवासियों, पिछड़े और पसमांदा अल्पसंख्यकों की लगभग अनुपस्थिति है। इनकी आवाज़ और इनके मुद्दे भी मीडिया मे नहीं आते (पृष्ठ 142)"।

भारतीय मीडिया की विसंगति, विचलन, जातिगत संरचना, पूर्वाग्रह, पूंजीवादी स्वरुप आदि को पुस्तक में विभिन्न उदाहरणों से समझाया गया है। जातिगत जनगणना के विरोध में लगभग सभी मीडिया समूहों का एकमत होना, आरक्षण विरोधी आंदोलन का पुरज़ोर समर्थन, दलितों- आदिवासियों- पिछड़ों के आंदोलनों की अनदेखी, मीरा कुमार द्वारा जातिगत जनगणना पर दिए गए बयान को एनडीटीवी द्वारा तोड़-मरोड़कर पेश किया जाना, सैंडल के मामले में मायावती पर वार आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो मीडिया की सामाजिक बनावट और उसके जातीय पूर्वाग्रह को प्रतिबिंबित करते हैं। न्यूज़रूम में खास जातियों और वर्गों के आधिपत्य पर सवाल उठाते हुए मंडल जी कहते हैं-

"क्या मीडिया इस देश के ज़्यादातर लोगों की आवाज़ बनने में असमर्थ है और ऐसा मीडिया की आर्थिक संरचना की वजह से है या फिर न्यूज़रूम में अगर दलित, आदिवासी और पिछड़े पत्रकारों की संख्या आबादी में उनकी संख्या के समानुपात में होती तो भी क्या मीडिया इसी तरह से व्यवहार करता" (पृष्ठ 98)?

लोकतंत्र को जीवंत बनाये रखने के लिये ज़रूरी है कि पब्लिक स्फीयर (जुरगेन हैबरमास) को मुक्त और सतत गतिशील बनाये रखा जाए और लोगों को समाचार सामग्री, विचार व मनोरंजन विविध एवं प्रतियोगी स्रोतों से प्राप्त हो (बेन बैगडिकीयान)। भारत में लगभग अस्सी हज़ार से भी ज़्यादा समाचार पत्र-पत्रिकाएं और 600 से ज़्यादा टेलीविज़न चैनल हैं। सूचना के विविध मंचों के आधिक्य से भ्रमित हुआ जा सकता है कि भारत में सूचना का लोकतंत्र है लेकिन यह कदापि सही नहीं है। हजारों की संख्या में मीडिया संस्थान होने का बावजूद भी भारतीय मीडिया बाज़ार में केवल कुछ मीडिया घरानों का वर्चस्व है। किसी भी क्षेत्र में दो-तीन समाचार पत्रों का पाठकों की अस्सी-नब्बे प्रतिशत आबादी पर कब्ज़ा है। मीडिया का संकेन्द्रण लोकतान्त्रिक विमर्श को बाधित करता है। मंडल जी बताते हैं कि-

"पिछले 20 साल भारत में मीडिया के तेज़ विकास के ही नहीं बल्कि मीडिया संकेन्द्रण यानी कंसेन्ट्रेशन के साल रहे हैं। इन वर्षों में कुछ मीडिया समूह बहुत बड़े हो गए हैं। ये देश की बड़ी कंपनियों में शामिल हैं" (पृष्ठ 110)।

मीडिया को लेकर जो हमें एक पवित्रता का बोध होता था अब वह पुराने ज़माने की बात हो गयी है। नीरा राडिया और अमर सिंह टेप कांड से मीडिया का कच्चा चिठ्ठा खुल गया। लोगों को पता चल गया कि किस तरह मीडिया, राजनीति, व्यवसाय, उद्योग और दलालों का गठजोड़ लोकतंत्र के विभिन्न स्तंभों के रिश्तों को पुनर्परिभाषित कर रह है। जहाँ मीडिया एक ओर गरीबों के आंदोलनों का विरोध करता है वहीँ दूसरी ओर अन्ना

हजारे के आन्दोलन पर मीडिया अति प्यार बरसाया। ध्यान रहे कि अन्ना का आन्दोलन कार्पोरेट के ख़िलाफ नहीं था और दूसरे वह शहरी हिन्दू पुरुष भद्रजनों का आन्दोलन था और इसीलिए मीडिया उसको अपना आन्दोलन मान रह था। जो मीडिया राष्ट्रमंडल खेलों की आलोचना करते नहीं थकता था वही मीडिया बम्पर विज्ञापन मिलने पर अथक गुणगान में तल्लीन हो गया। खुद की बारी आने पर दूसरों का भंडाफोड़ करनेवाला मीडिया दुम दबाकर बैठ जाता है।

जहाँ एक ओर मंडल जी मुख्यधारा की मीडिया से निराश हैं वहीँ दूसरी ओर न्यू मीडिया (सोशल नेटवर्किंग साईट, विकिलीक्स इत्यादि) से उन्हें काफ़ी उम्मीदें हैं। सीमाओं के बावजूद भी न्यू मीडिया की वहनीयता, पहुँच, ताकत और लोकतान्त्रिक संरचना से वह काफ़ी आशान्वित हैं। सामाजिक और आर्थिक रूप से सीमांत समूहों द्वारा नया मीडिया का इस्तेमाल संगठित होने, जागृत करने और व्यापक आन्दोलन खड़ा करने में किया जा सकता है। हैदराबाद विश्वविद्यालय (रोहित वेमुला) और जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय (कन्हैया कुमार और राष्ट्रवाद की बहस) के तत्कालीन घटनाक्रमों और उत्तरवर्ती अभियानों में फेसबुक जैसे न्यू मीडिया माध्यमों के इस्तेमाल से नया मीडिया के सन्दर्भ में मंडल जी की मान्यता सिद्ध प्रतीत होती है। वह कहते हैं कि-

इन्टरनेट और साइबर दुनिया में विचारों और सूचनाओं के मुक्त प्रवाह की गुंजाइश बाकी जनसंचार माध्यमों से ज़्यादा है...इन्टरनेट की इन्ही खूबियों की वजह से सरकारें अक्सर इन्टरनेट को नियंत्रित करना चाहती हैं (पृष्ठ 90)।

दिलीप मंडल जी भारतीय मीडिया के अति पूंजीवादी व जन विरोधी स्वरुप को समझाने के लिये न केवल विभिन्न मुद्दों का उदाहरण पेश करते हैं अपितु विभिन्न रिपोर्टों – फिक्की-केपीएमजी, अफैक्स, गूगल ट्रांसपेरेंसी रिपोर्ट, विकिलीक्स के केबल, इंडियन रीडरशिप सर्वे, कोम्स्कोर की रिपोर्ट इत्यादि - का भी सहारा लेते हैं। इसके अलावा अपनी बात को मजबूती प्रदान करने के लिये सम्बंधित मीडिया पाठों को भी उद्दृत करते हैं। ख़बरों के शीर्षकों का प्रस्तुतीकरण करके वह मीडिया में मौजूद जातिगत विभेद को समझाने के लिये उपयोगी उपकरण पाठकों को प्रदान करते हैं। अपनी बात को एक बृहत् परिप्रेक्ष्य में स्थापित करने हेतु दिलीप मंडल जी भारतीय और देश-विदेश के तमाम विशेषज्ञों और मीडियाकर्मियों के कार्यों का भी ज़िक्र करते हैं। दिलीप मंडल जी अपने केंद्रीय विचार- मीडिया अब कार्पोरेट हो चुका है और उसका जन विरोधी होना उसकी संरचनात्मक मजबूरी और ख़ासियत है – को स्थापित, विकसित और सिद्ध करने में सफल रहे हैं।

'चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड' पुस्तक को और भी समृद्ध किया जा सकता था। पुस्तक में कुछ अध्यायों और मुद्दों को अत्यन्त संक्षेप में लिखा गया है। इसके अलावा कई मुद्दे जैसे अन्ना आन्दोलन, नीरा राडिया कांड, राष्ट्रमंडल खेल आदि का कई बार दुहराव हुआ है जिसे और व्यवस्थित ढंग से एक सूत्र में पिरोया जा सकता था। हालाँकि इसमें कोई दो राय नहीं है कि दिलीप मंडल जी भारतीय मीडिया और भारतीय समाज के अन्तर्सम्बन्धों और मीडिया के कारपोरेटीकरण, जातिवादी और पूंजीवादी चरित्र को उजागर करने में कामयाब रहे हैं।

अंततः यही कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं शताब्दी में आ रहे मूल्यों में बदलाओं, लोकतंत्र और मीडिया के संबंधों की पुनर्संरचना, सामाजिक संरचना की मीडिया में प्रतिबिम्बिता, मीडिया का घनघोर पूंजीवादी होना और गलाकाट प्रतिस्पर्धा में शामिल होना, उसका जातिवादी होना, भाषाई व धार्मिक अल्पसंख्यकों के खिलाफ़ होना आदि मुद्दों को समझने के लिये दिलीप मंडल जी द्वारा लिखित पुस्तक 'चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड' मीडियाकर्मियों, पाठकों, शोधार्थियों और आमजनों के लिये अत्यंत उपयोगी है।

'चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड' लेखक :दिलीप मंडल,
राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली (2016 प्रथम संस्करण)
ISBN 978-81-267-2829-9
मूल्य: 150 रूपये
पृष्ठ: 152